अध्याय : 2

हिन्दी के असंगत नाटक और हमीदुल्ला के असंगत नाटकों की अवधारणा

SHIVAJI UNIVERSITY
LIBRARY
KOLHAPUR

अध्याय : 2

हिन्दी के असंगत नाटक और हमीदुल्ला के असंगत नाटकों की अवधारणा

भूमिका

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने प्रयोगशील वृत्ति अपनाकर एक सशक्त नाट्यशैली की खोज का प्रयत्न किया। इसी प्रयत्न की उपलब्धि के रूप में हिन्दी की विसंगत नाट्य विधा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्यसाहित्य की नवीनतम उपलब्धि है, जिसको पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य साहित्य ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। पाश्चात्य साहित्य में असंगत नाट्य साहित्य का आरम्भ द्वितीय महायुद्ध के भीषण परिणामों से निर्माण हुई संत्रासजन्य परिस्थितियों के कारण हुआ। महायुद्ध ने मनुष्य के जीवन को नकार दिया और उसमें घोर निराशा, टूटन, अनास्था, और निस्सारता व्याप्त हो गयी। निस्सारता, निराशा एवं विडम्बना के कारण उसके जीवन में पंगुता, भय, आतंक, अनास्था, अविश्वास, परवशता और टूटते मानवीय मूल्यों ने व्यक्ति के जीवन को दमित, कुंठित, खंडित, विशृंखला, अपराधग्रस्त और क्षणभंगुर बना दिया। इस विघटित मानसिकता का प्रभाव साहित्य पर भी हुआ और इसी विघटित मानसिकता को प्रकट करने के लिए साहित्य की विभिन्न विधाएँ साधन बन गयी। पाश्चात्य नाटककारों ने नाटक द्वारा युगीन विसंगतियों को चित्रित किया। इसी प्रवृत्ति को नाटककारों ने आन्दोलन के रूप में स्वीकार कर युगीन विसंगतियों को चित्रित किया।

अतः हिन्दी जगत् में भी पाश्चात्य की तरह विश्वयुद्धों, मशीनी अविष्कारों तथा भौतिक वृत्तियों का मनुष्य जीवन पर गहरा परिणाम हुआ। परिणामस्वरूप भारत में भी अकेलेपन, संबंधहीनता, आन्तक, क्षणभंगुरता तथा अविश्वास की भावना उभरकर आयी। स्वार्थपरक राजनीति, अर्थलिप्सा, स्त्री-पुरूष सम्बन्ध, युवा पीढ़ी की

उच्छृंखलता, दायित्वहीनता, समानता का प्रश्न, भ्रष्टाचार के कारण भारतीय मनुष्य जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। यहाँ के व्यक्ति को बेरोजगारी और गरिबी ने मरोड़ डाला है, परिणामस्वरूप उसका जीवन अर्थहीन, अनिश्चित और तनावपूर्ण बन गया है। अतः हिन्दी जगत् के नाटककारों ने भी पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य-शिल्प के प्रभाव के कारण हिन्दी में भी असंगत नाट्य-शिल्प द्वारा असंगत परिस्थितियों को चित्रित करने का प्रयास किया है।

हिन्दी के विसंगत नाटककार और उनके नाटक

हिन्दी नाटक क्षेत्र में असंगत नाटक लिखने का सम्मान सबसे पहले भुवनेश्वर को दिया जाता है। भुवनेश्वर के बाद असंगत नाटकों की परम्परा कई वर्ष तक खंडित जरूर रही, लेकिन उन्होंने ही परम्परागत ढाँचे को तोड़ने का साहस किया। इस संदर्भ में नरनारायण राय ने लिखा है - "असंगत नाट्य सैम्युएल बेकेट के साथ-साथ 1950 के बाद काफी प्रचलित और प्रसिद्ध हुआ हो, लेकिन भारतवर्ष में ही एक बेकेट इसके वर्षों पूर्व "भुवनेश्वर" के नाम से कई असंगत नाटक लिख चुका था, अलबत्ता उसे उतना प्रचार और प्रसार प्राप्त नहीं हो सका जितना सौभाग्यवश बेकेट को प्राप्त हुआ।"[1] भुवनेश्वर के बाद असंगत नाटकों की परम्परा 1963 से विपिनकुमार अग्रवाल के नाटकों से फिर आरम्भ होती है। भुवनेश्वर और विपिनकुमार अग्रंवाल के अतिरिक्त डॉ·लक्ष्मीकांत वर्मा, डॉ·शम्भुनाथ सिंह, मुद्राराक्षस, मणि मधुकर, काशिनाथ सिंह, डॉ·लक्ष्मीनारायण लाल, बृजमोहन शाह, डॉ·सत्यव्रत सिन्हा, राजकमल चौधरी, रमेश बक्षी, हमीदुल्ला, रामेश्वर प्रेम, सुदर्शन चोपड़ा, शांति मेहरोत्रा, चंद्रशेखर तथा डॉ·चंद्र, रमाशंकर निलेश ने हिन्दी असंगत नाट्य जगत् को महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रसिध्द हिन्दी जगत् के इन विसंगत नाटककारों के नाटकों की संक्षिप्त रूपरेखा निम्नलिखि है -

भुवनेश्वर प्रसाद

आधुनिक हिन्दी नाटकों को नयेपन का संस्पर्श देने में "भुवनेश्वर" का नाम सर्वप्रथम सामने आता है। उन्होंने नाटक के कथ्य और शिल्प को परम्परागत ढाँचे से तोड़कर आधुनिक असंगत तथा ऊलजलूल कथ्य और शिल्प के रूप में लिखना

प्रारम्भ किया। डॉ॰सत्यवती त्रिपाठी ने लिखा है - "भुवनेश्वर का महत्व हिन्दी नाटक में एक नयी शैली का सूत्रपात करते हुए प्रवर्तक कार्य करने की दृष्टि से है।"[2] अतः भुवनेश्वर के नाटकों से ही आधुनिक असंगत नाटकों का प्रारम्भ होता हे, इसीलिए उन्हें हम आधुनिक नाटकों का आद्य प्रणेता के रूप में देख सकते हैं।

हिन्दी में असंगत नाटकों का प्रारम्भ भुवनेश्वर के एकांकी "तांबे के कीड़े" §1946 ई॰§ से होता है। उसके पहले "कारवा" तथा अन्य एकांकी में संकलित "ऊसर" में भी भुवनेश्वर नाटक के कथ्य और शिल्प के ढाँचे में परिवर्तन कर चुके थें। उनके "ऊसर" नाटक §1930§ में जीवन के अकेलेपन के एहसास और खोखलेपन तथा विसंगतियों को भद्दे संवाद और अजीबोगरीब हरकतों द्वारा चित्रित किया है। यह नाटक कथाविहीन है। उनका "स्ट्राइक" नामक एकांकी भी असंगत नाट्यशैली के अन्तर्गत आता है, जिसमें उन्होंने स्त्री-पुरूष के वैवाहिक सम्बन्धों की विसंगति पर प्रकाश डाल दिया है।

भुवनेश्वर के एकांकी "ताँबे के कीड़े" परम्परागत नाट्यविधान से पृथक है। इस एकांकी में न कोई कथा का विकास पाया जाता है, न कोई सुधारित मंच-विधान। इस एकांकी के मंच के नाम पर केवल काला स्क्रीन है और झुनझुना लिए खडी अनाडंसर स्त्री। उनका यह नाटक पूरी तरह से हरकत की भाषा से भरापूरा है। इसमें परम्परागत पात्रों की तरह कोई संगति या मेल नहीं है और पात्रों का चरित्र-चित्रण भी नहीं दिखाई देता। इसमें बाहर से अनेक पात्रों की आवाजें निकलती हैं जो पूरे एक परिवेश का निर्माण करती है। इसके मंच पर केवल एक ही स्त्री पात्र हैं, जो हाथ में झुनझुना लिये खडी अनाउंसर के रूप में और रंग-बिरंगे शीख कपडों में दिखती हैं। अफसर, मझरूफपति, रिक्शावाला, निर्मला, पागल आया, परेशान रमणी ये शेष पात्र नेपथ्य स्वर में ही अपनी उपस्थिति और "ट्रेजडी" का आभास करते हैं। नाटक में जीवन की त्रासदी है जो रिक्शावाले के ऊलजलूल नाच तथा भद्दी लय के गाने के साथ ही समाप्त होती है।

भुवनेश्वर प्रसाद के नाटक "ताँबे के कीड़े" में रिक्शावाले, थके असफर, परेशान रमणी, मसरूफ पति और अनाउंसर के संवादों द्वारा ही मनुष्य जीवन की

ऊब, निरर्थकता, समकालीन राजनैतिक भ्रष्टाचार और विसंगत परिस्थितियों में जीवन को ढोने की विवशता को बहुत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। समसामयिक यथार्थ के बीच हास्य, व्यंग्य और बेतुकेपन की रचना कर भुवनेश्वर त्रासदी को गहरा कर चुके है। अतः हिन्दी में "तौंबे के कीड़े" सर्वथा नयी और असंगत नाट्यशैली की आरम्भ की रचना थी। इसकी तिलमिलाहट, आदमी की बेचैनी, तनावपूर्ण वातावरण, तल्खी अकेलेपन की पीड़ा, आक्रमक चित्र, शिल्प का नयापन, असम्बद्ध भाषा और संवादहीनता की स्थिति के कारण यह नाटक असंगत नाट्य परम्परा का सशक्त दस्तावेज के रूप में सामने आता है।

विपिनकुमार अग्रवाल

भुवनेश्वर के बाद स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में असंगत नाट्य परम्परा का विपिनकुमार अग्रवाल ने व्यवस्थित सृजन किया। इस विधा को पुनः प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य विपिनकुमार अग्रवाल के "तीन अपाहिज" (1063 ई) एकांकी से होता है। विपिनकुमार अग्रवाल के "तीन अपाहिज" नाटक लघु नाटकों का संग्रह स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्याप्त विसंगतियों और विद्रुपताओं को हरकत की भाशा और असम्बद्ध संवादों द्वारा प्रस्तुत करता है। इसमें भारत में व्याप्त अपाहिजत्व को रूपायित किया गया है। कल्लू, खल्लू और गल्लू यह तीनों ही पात्र अपाहिजत्व के कारण कोई काम नहीं करना चाहते हैं। इनके संवाद भी निरर्थक और बेतुके हैं। इसका कथोनक जहाँ से आरम्भ होता है, वही समाप्त होता है। डॉ॰सुषमा बेदी ने लिखा है - "तीन अपाहिज" पूरा पूरा भारतीय मनःस्थिति का नाटक है। आज़ादी के बाद के निकम्मेपन, भ्रष्टाचार, खंडित आस्थाओं और शब्दजाल की राजनीति से अपाहिज हुआ भारतीय मानस ही इस नाटक के भीतर से व्यंग्य और "आयरनी" के या विसंगति के स्तर पर उभारता है।"[3] इस संग्रह के अन्य नाटक "उल्टा-सीधा स्वेटर", "ऊँचे-नीची टाँग का जाँघिया", "उत्तर का प्रश्न", "रेल कब आयेगी", "एक स्थिति" आदि एकांकियों में समसामयिक युग की असंगतियों के गहरे रूप दृष्टिगोचर होते हैं। यह नाटक पूरा एक शब्द है। इसकी भाषा पूरी व्यावहारिक तथा विसंगतियों का चित्रण में सक्षम है।

डॉ·विपिनकुमार अग्रवाल का "लोटन" §1973§ नाटक भी विसंगत नाट्य परम्परा में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह तीन अंकों का लघु नाटक है। इस नाटक में वैज्ञानिक युग के अभिशाप को मूर्त करने का प्रयत्न किया है - "औद्योगीकरण के कारण अनेक विसंगत परिस्थितियाँ निर्माण हो चुकी हैं जिसका चित्रण इस नाटक में किया गया है। इसी औद्योगिकीकरण ने मनुष्य और मशीन का अन्तर मिटा दिया है। राजनीति से लेकर व्यक्तिगत जीवन तक अनेक समस्याओं, अभावों और असंगतियों ने मनुष्य के विवेक और चेतना को ही नष्ट कर दिया है। "तीन अपाहिज" की तरह "लोटन" में भी कथा या चरित्र महत्वपूर्ण नहीं हे, महत्वपूर्ण है असंगति, जिसे अग्रवाल ने विसंगत नाट्य-शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

डॉ·लक्ष्मीकान्त वर्मा

डॉ·लक्ष्मीकान्त वर्मा ने आधुनिक हिन्दी लेखन की प्रत्येक विधा में रचनात्मक सहयोग किया है। वे नयी कविता के सशक्त कवि और समीक्षक के रूप में प्रसिद्ध हैं। नाटक के क्षेत्र में भी उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका "अपना अपना जूता" §1968§ नाटक लघुनाटक एक नया प्रयोग के रूप में §असंगत नाट्य-शिल्प§ सक्षम है। जिसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, खोखलेपन, संवेदनहीनता, स्वार्थपूर्ण नीतियों और इन सबसे निर्मित असंगत परिस्थितियों को व्यंग्यात्मक रूप से अभिव्यक्त करते हैं। वर्माजी का सन 1994 में प्रकाशित "रोशनी एक नदी है" नाटक विसंगत नाट्य-शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण और सफल प्रयोग रहा है। इस नाटक में वर्माजी ने भीड, शोर और उसके बीच पीसते मनुष्य की नियति को ही असंगत नाट्य-शिल्प के माध्यम से चित्रित किया है। इस नाटक की भाषा व्यंग्यात्मक और पात्र विसंगत हैं। यह नाटक एक अंक में घटित होता है। इस नाटक की मुख्य विशेषता प्रतिकात्मकता, सांकेतिकता, मुखौटों का प्रयोग तथा दर्शकों को नाटक के साथ तादात्म्य रखने का प्रयास ही है।

काशिनाथ सिंह

काशिनाथ सिंह का "घोआस" §1967 ई·§ नाटक पहाड़ी क्षेत्र के एक कस्बे और उसके आसपास के परिवेश को विसंगत नाट्यशैली में रेखांकित करता है। नाटक के सभी पात्र अनेक समस्याओं से घिरे निरर्थक और संत्रस्त जीवन बिताते

हैं। इस नाटक में सुनियोजित कथानक नहीं हैं। इस नाटक के संवादों में गतिशीलता न होने के कारण दर्शक गण ऊब भी जाते हैं। इस नाटक में कार्य-व्यापार कम और कथोपकथन अधिक है। इस नाटक की प्रतिकात्मकता बड़ी सशक्त है। यह नाटक खुले मंच का है और तीनों अंकों का रंगस्थल भी एक ही है।

डॉ·शम्भूनाथ सिंह

डॉ·शम्भूनाथ सिंह ने असंगत नाट्य-परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी "दीवार की वापसी" एकांकी में व्यक्ति की आन्तरिक करूणा को अभिव्यक्त किया है। उसके सभी पात्र "क" की तरह भ्रम में जीते हैं और पागलों की तरह बर्ताव करते हैं। इसका मंच-विधान पारम्परिक होकर भी कथ्य कुछ लीक से हटकर है। इसकी भाषा सपाट बयानी लिए हुए हैं और संवाद में बेतुकापन है। अतः यह नाटक असंगत परम्परा की दृष्टि से आंशिक रूप में ही सफल रहा है। डॉ·शम्भूनाथ सिंह का "अकेला शहर" तीन अंकी नाटक है, जिसमें मनुष्य अकेलेपन में किस तरह का बर्ताव करता है इसका चित्रण किया है।

मणि मधुकर

मणि मधुकर का "रसगंधर्व" (1975) एक सशक्त नाटक है, जो कथ्य में विशाल दृष्टि लेते हुए शिल्प की दृष्टि से भी एक नया और मौलिक प्रयोग है। इस नाटक में भारत की राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और नैतिक असंगतियों की परिस्थितियों में फंसे सामान्य मनुष्य के जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति है। यह लोककत्व और ऐतिहासिक धरातल पर लिखा नाटक होकर भी असंगत नाटकों की तरह इस नाटक में भी न कोई कथानक है, न कथानक का विकास की परम्परागत स्थितियाँ। इस नाटक में नायक और नायिका नहीं हैं। उसके संवाद काव्यात्मक होते हुए भी उसमें उखडेपन, असम्बद्धता, अनर्गलता और बेतुकेपन से भरे-पूरे हैं, जो आधुनिक असंगत स्थितियों और मनुष्य जीवन की विडम्बनाओं को व्यंग्यात्मक रूप से चित्रित करते हैं। मणि मधुकर का "रस गंधर्व" पूरी तरह से विसंगत नाटक नहीं हैं। इसमें एक ही स्त्री छह रूपों में अभिनय करती है। इसमें स्वयं नाटककार

ने भी कवि, अफसर, सूत्रधार आदि अनेक रूपों में काम किया है। इसकी भाषा सशक्त और नाट्यात्मक है। इसका मंचन जेल की एक ही सेट पर होता है। यह नाटक कार्य-व्यापार से भरा-पूरा है। इस दृष्टि से नाटक में एक साथ यथार्थवादी, फैण्टसी, लोकनाट्य, प्रतिकात्मक और विसंगत नाट्य-शिल्प की विशेषताएँ देखी जा सकती है। इसलिए यह हिन्दी में अपने ढंग का अकेला प्रयोग है।

मणि मधुकर का "खेला पोलमपुर" नाटक विसंगत नाट्यशैली में लिखा हुआ है जो असंगत परिस्थिति में सर्वसामान्य आदमी के आक्रोश को पूरी सशक्तता के साथ प्रस्तुत करता है। डॉ·जयदेव तनेजा ने लिखा है - "लोक कथा, गीत, संगीत, अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध जन-आक्रोश एब्सर्ड से लगने वाले स्थितियों के अन्तर्विरोध को उजागर करते पैने संवाद तथा अभिनय लचीला रंग-शिल्प जैसी चिर-परिचित मधुकरीय विशेषताएँ हमें यहाँ भी देखने को मिलती हैं।"[4]

मणि मधुकर ने प्रतिकात्मक तथा बेतुकेपन का प्रयोग कर वर्तमान परिवेश की असंगति, मनुष्य की अस्तित्व हीनता और भयावह वातावरण को अपने नाटकों में मूर्त कर दिया है।

डॉ·सत्यव्रत सिन्हा

डॉ·सत्यव्रत सिन्हा का "अमृत पुत्र" (1974) प्रथम रंगमंचीय नाटक है, जो आधुनिक विरंगत परिवेश को प्रस्तुत करता है। यह पारम्परिक ढाँचे से युक्त नाटक है। इसमें कथ्य की दृष्टि से कोई सुनिश्चित कथानक और उसका विकास नहीं है। यद्यपि इसमें कथासूत्र अवश्य है जो विभिन्न सन्दर्भों में समसामयिक मनुष्य जीवन को अभिव्यंजित कर देता है। यह चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सफल कृति है। इसका प्रत्येक चरित्र अपनी अलग-अलग पहचान और भाषा का प्रयोजन करते हैं। इसकी वेशभूषा भी पात्रों से अनुकूल रही है। डॉ·सत्यव्रत सिन्हा रंगक्षेत्र से सम्बधित होने के कारण इसमें रंगमंचीय तत्वों का पूरा ध्यान रखा गया है। नाटक अंक और दृश्यविभाजन के बिना प्रभावशाली ढंग से अन्त तक चलता है। लेकिन प्रकाश योजना और ध्वनि-संयोजन से ही अन्तराल सूचित किया गया है। इसके रंग-निर्देश नाटक के मंचन में सहयोग देते हैं, जो पात्रों के व्यक्तित्व और मनःस्थिति

13129

को स्पष्ट कर देते हैं। डॉ·रीता कुमार लिखती हैं - "सत्यव्रत सिन्हा एक प्रसिद्ध रंगकर्मी व निर्देशक हैं। रंगमंच के बीच जीने के कारण ही "अमृत पुत्र" उनका पहला नाटक होते हुए भी एक सुसंगठित, रंगमंचीय गुणों से पूर्ण तथा शिल्पगत मौलिक प्रयोगों से युक्त नाटक बन सका है।"[5]

डॉ·लक्ष्मीनारायण लाल

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों में डॉ·लक्ष्मीनारायण लाल का महत्वपूर्ण स्थान है। कथ्य और शिल्प में निरन्तर प्रयोग वृत्ति और सूक्ष्म रंग दृष्टि के कारण नाटक के क्षेत्र में वे अग्रगण्य रहे हैं। उनके प्रायः सभी नाटकों विशेषकर "कफी हाऊस में इन्तजार", "सुर्यमुख", "मिस्टर अभिमन्यु", "अब्दुला दीवाना", "सबरंग मोहभंग" आदि में मनुष्य जीवन की विभिन्न विसंगतियों का चित्रण कम-अधिक मात्रा में दिखाई देता है। इनके अन्य नाटकों की उपेक्षा "सब रंग मोहभंग" नाटक में ही विसंगत नाट्यशैली का सर्वाधिक प्रयोग पाया जाता है। यह नाटक दो अंकों में विभाजित है। इसमें मनुष्य जीवन का बिखरा हुआ विसंगत परिवेश है, जिसे कई छोटे-मोटे दृश्यों द्वारा प्रदर्शित किया गया है और ये दृश्य भी एक-दूसरे से सम्बद्ध नहीं है। इस नाटक में समसामयिक समाज की कई समस्याओं को एक साथ उठाया है, परंतु उन समस्याओं का कोई समाधान नहीं दिया है।

"नाटक के प्रथम अंक में पाँच दृश्य हैं। पहले दृश्य में युवक-युवती के वार्तालाप द्वारा दर्शक और अभिनेता की मानसिकताओं की टकराहट व्यक्त हुई हैं। सूत्रधार दोनों में तालमेल बिठाना चाहता है। इसके लिए वह उनके सामने सड़क का रोमान्स का दृश्य प्रस्तुत करता है। "सड़क के रोमान्स" के द्वारा नाअककार ने आधुनिक जीवन में प्रेम की जुगुप्सित स्थिति प्रदर्शित की है। नाटक का तीसरा दृश्य मनुष्य जीवन की वास्तविकता और रोजी-रोटी की समस्या तथा गृहस्थी की आये दिन किच-किच का चित्रण है। चौथे दृश्य में मांस का नया स्वाद पाने का लालायित राजा मनुष्य का मांस खाने लगता है। अतः रक्षक ही भक्षक की स्थिति को उजागर कर, आधुनिक राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है। पाँचवे दृश्य में महाभारत की कथा को उलट फेर करके मनुष्य जीवन में अवसरवादिता को नकारात्मक

दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। दूसरा अंक स्वतंत्र नाटक है, जिसमें समुद्र मंथन के मिथकीय संदर्भों का प्रतिकात्मक उपयोग करते हुए आधुनिक समाज की विसंगतियों का संकेत दिया गया है। डॉ॰लाल भारतीय समाज के आंतरिक व्यभिचार का चित्रण करना चाहते हैं।"[6]

राजकमल चौधरी

विसंगत नाट्य-शैली में लिखा राजकमल चौधरी का "भग्नस्तूप" एक अक्षत स्तंभ" नाटक अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें लेखक पाठकों और दर्शकों को छूट देता है कि इसे नाटक मानें या न माने। भग्नस्तूप लेखक की देह का भी प्रतीक है और 1947 के बाद के भारत का भी। "अक्षत स्तंभ" पूरी स्थितियों की भयावह निष्पत्ति है। नाटक के अधिकांश पात्र नेपथ्य में जीते हैं और मंच पर आते आते मर जाते हैं। शेष पात्र मंच पर रहकर भी नेपथ्य में ही रात्रि व्यतीत करते हैं। नाटक का नेपथ्य आंतरिक यथार्थ का प्रतीक है।[7]

बृजमोहन शाह

बृजमोहन शाह का "त्रिशंकू" नाटक आधुनिक मनुष्य जीवन की असंगत परिवेश को अभिव्यंजित करता है। इसमें वर्तमान राजनैतिक जीवन पर करारा व्यंग्य है। इसमें अनेक विसंगतियों को चित्रित किया है, जैसे उच्चवर्गीय नेता, अफसर, सेठ, मध्यमवर्गीय सिपाही, बाबू, युवती, ज्योतिषी, निम्नवर्गीय मजदूर, भिखारिन, चपरासी, विज्ञापनकर्ता और बिना किसी वर्ग के बुद्धिजीवी युवक, समीक्षक आदि को लेकर समाज के विस्तृत धरातल को प्रस्तुत किया है।

बृजमोहन शाह का दूसरा नाटक "शह ये मात" (1975) है। जिसमें अतीत की असफलताओं की कुंठा, उग्र वर्तमान और अनिश्चित भविष्य में जीते मनुष्य की प्रतिक्रियाओं का प्रतिकात्मक रूप में विसंगत नाट्य-शिल्प द्वारा अभिव्यंजित किया है। यह नाटक एक ही दृश्य-बंध पर घटित होता है। नाटककार ने अपनी बात कहने के लिए कई प्रतीक और बिम्बों का निर्माण किया है। इसके चरित्र स्थूल ही रहे हैं। विसंगति और कल्पनाशीलता पर संपूर्ण नाटक के चरित्र आधारित हैं।

रमेश बक्षी

सन 1972 में रमेश बक्षी कृत नाटक "देवयानी का कहना है" नाटक परम्परागत सामाजिक मूल्यों को नकारता हुआ विवाह संस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। परम्परा से चली आयी वैवाहिक मान्यताओं और आधुनिक पीढ़ी की आक्रमक प्रवृत्ति पर आधारित यह नाटक वर्तमान जीवन में एक सशक्त समस्या को असंगत नाट्य-शैली में प्रस्तुत करता है। नाटक में विसंगत नाटकों की तरह कथानक और घटनाओं का अभाव पूरी तरह नहीं है। नाटक में देवायनी विद्रोहिणी के रूप में आती है। नाटक एक ही दृश्य बन्ध और तीन खण्डों में विभाजित होकर वस्तुतः खण्ड रहित प्रतीत होता है। क्योंकि इसके तीनो खण्डों में कोई परिवर्तन नहीं, एकरस स्थिति चलती रहती है। इसका अन्तराल प्रकाश-योजना द्वारा सूचित किया गया है। नाटक का संघटन भी दोषरहित है। नाटक प्रारम्भ से अन्त तक एक ही बिन्दु पर रूका रहता है। इसके कार्य व्यापार में भी उतार चढाव होने के कारण उमसें एकरसता और पुनरावृत्ति का दोष आ गया है।

रमेश बक्षी का दूसरा नाटक "तीसरा हाथी" (1975) मध्यवर्गीय परिवार के दमघोंट वातावरण को प्रस्तुत कर सामाजिक मान्यताओं के सामने प्रश्नचिन्ह लगाता है। यह नाटक कथावसतु में रूग्ण होकर भी पिता (मुशरीलाल शर्मा) और उनके पाँच सन्तानों के संघर्ष के द्वारा युवापीढ़ी के आक्रोश को अभिव्यक्त करता है। यह चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सूक्ष्म तथा स्पष्ट है। प्रत्येक चरित्र अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं के साथ विकास प्राप्त करता है। इसकी भाषा नाटक के अनुकूल है, जो कथानक को गति देने में सशक्त है। इसके संवाद भी पात्रों का परिचय देते और वातावरण पर छाये आतंक को तथा परम्परागत बोझ के प्रति युवा पीढ़ी के आक्रोश को निर्भीक विद्रोह को प्रस्तुत करने में पूरा सक्षम है। यह नाटक एक ही दृश्य बन्ध और अंक में घटित है। इसमें प्रकाशयोजना का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसकी कथावस्तु एक व्यापक सत्य का रूप धारण नहीं करती। अतः असंगत नाट्य-शिल्प के अनुसार सारे पात्र बेतुके और निरर्थक लगते है।

रमेश बक्षी का "बामाचार" नाटक वर्तमान समाज में बढते नैतिक मूल्यों के विघटन को प्रस्तुत करता है। एक ही व्यक्ति के दो रूप दिखाने के लिए उन्होंने "पॉजिटिव" तथा "निगेटिव" दो पात्रों को मंच पर उपस्थित किया है। स्त्री-पुरुष संबंधों में बढ़ते खुलेपन तथा यौन-भावनाओं का चित्रण किया गया है। "शिल्प की दृष्टि से नाटक में कोलाज की शैली में कई दृश्यों को गड्डमगड्ड कर दिया गया है। भैरवी तंत्र का साधना का दृश्य नाटककार की नये प्रयोग के रूझान की दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेख्य है (पृ॰53-56)। यह समाज में व्याप्त विपरित आचरण या "वामाचार" का नमुना प्रस्तुत करता है।"[8]

रामेश्वर प्रेम

आधुनिक हिन्दी की असंगत नाट्य परम्परा की नयी कड़ी प्रस्तुत करने में उदयमान नाटककारों में "रामेश्वर प्रेम" ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके प्रमुख नाटक "कैप", "अजातघर", "चारपाई" और "अंतरंग" हैं। उनके नाटकों में मनुष्य जीवन के अत्यन्त तनावपूर्ण यथार्थ औरे मानवीय द्वंद्व को सफलता के साथ व्यक्त किया है। असंगत नाट्य-शैली में लिखा नाटक "कैप" (1983) युद्ध की परिणतियों का चित्रण करता है। उनका "अजात घर" नाटक आतंक, आशंका और रहस्यमय वातावरण को अभिव्यक्त करता है। यह हिन्दी का महत्वपूर्ण नाटक है। भुवनेश्वर की नाटकों की तरह इसमे भी पात्रों के नामों में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के स्थान पर जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। नाटक के दोनों पात्र भय से आतंकित होकर अजात घर में पहुँचते हैं, लेकिन एक दूसरे से आशंकित होते हैं। यहाँ मनुष्य के भीतरी यथार्थ का चित्रण करना ही नाटककार का उद्देश्य रहा है। इसमें कोई घटना नहीं है।

"अजात घर" के बाद रामेश्वर प्रेम की दूसरी नाट्यकृति "चारपाई" है। जिसमें उन्होंने मध्यवर्गीय परिवार के सदस्यों के बीच चले वार्तालाप और एक-दूसरे से फटे होने की स्थिति का चित्रण किया है। विसंगत नाटकों की तरह इसमें भी सुनियोजित घटनाएँ और कथानक का अभाव है। इसके पात्र के नाम जातिवाचक संज्ञाओं के आधार पर रखे हैं। नाटक के सभी पात्र परस्पर वार्तालाप की स्थिति में जीते हैं। अतः भुवनेश्वर की तरह रामेश्वर प्रेम ने विसंगत नाटकों की शैली

का प्रभावशाली उपयोग किया है। डॉ॰सत्यवती त्रिपाठी ने लिखा है - "भुवनेश्वर के नाटकों के बाद विसंगत नाट्यशेली का पूर्ण उपयोग हिन्दी में कदाचित इसी नाटक में किया गया है।"[9]

मुद्राराक्षस

मुद्राराक्षस ने असंगत नाटकों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके नाटकों में सामाजिक विसंगतियों और मानव-मन में छिपी अमानवीयता को क्रूरता से व्यक्त किया है। उन्होंने अपने सभी नाटकों में असंगत नाटकों की शैली और तकनीक का भरपूर उपयेाग किया है। उनके नाटकों में मनुष्य के अस्तित्व की पंगुता और मानव नियति की त्रासदी ही अधिक पैमाने पर दृष्टिगोचर होती है, उनके कथ्य अनुकूल यथार्थ और प्रतिकों का आश्रय लेकर वर्तमान परिवेश को उघाड़कर रख देते हैं।

मुद्राराक्षस का "मरजीवा" (1974) नाटक वर्तमान युग का विसंगत और दमघोट वातावरण में दिशाहीन युवापीढ़ी का दर्दनाक यातनाओं का सजीव किन्तु कटु दृश्य प्रस्तुत करता है। यह पांच अंकों का नाटक है। प्रथम तीन अंकों का स्थान भूमि का कमरा है और अंतिम दो क्रमशः पुलिस स्टेशन और पार्क। इस नाटक के पात्रों के नाम प्रतिकात्मक शैली में रखे गये हैं। नाटककार ने सेक्स की समस्या को लेकर सुविधाभोगी अधिकारियों की मनोवृत्ति का कड़ा चित्रण किया है। इस नाटक में आम आदमी (बोलचाल) की साहित्यिक भाषा का प्रयोग जरूर हुआ है, फिर भी यह नाटक असंगत नाटकों की श्रेणी में विशेष महत्व नहीं रखता।

मुद्राराक्षस का विसंगत नाट्य-लेखन "योर्स फेथफुली" (1970) से ही प्रारम्भ होता है। इसमें दफ्तरों की नौकरशाही और अमानवीयता का विसंगत नाट्यशैली में चित्रण किया गया है। इसमें विसंगत नाट्य-शैली के साथ-साथ फैण्टसी का भी प्रयोग किया गया है। यह नाटक अभिनेता की दृष्टि से सफल रहा है। फिर भी यौन-भावनाओं का खुला प्रदर्शन इसके मंचन की संभावनाओं को सीमित कर देता है। इसके पात्र प्रायः निराश और टूटे हुए हैं। इसकी भाषा पात्रों की व्यक्तित्व को सहज और व्यावहारिक रूप से उघाड़कर रख देती है। डॉ॰चन्द्र ने लिखा है - "योर्स फेथफुली" में आज के व्यक्ति की विवशता और असंतोष को बड़े सशक्त

रूप में उभारा गया है। नाटक के पात्र निराश और टूटे हुए हैं। नाटक की भाषा सहज और व्यावहारिक है।"[10]

मुद्राराक्षस का "तिलचट्टा" (1972) एक दृश्यबन्ध नाटक है। यह नाटक वार्तालाप के आधार पर लिखा गया है। इसमें कार्यव्यापार का अभाव रहा है। यह नाटक देव और उसकी पत्नी केशी के बेड़रूम से सम्बद्ध है। तिलचट्टा आतकंवादी तथा काले आदमी का प्रतीक है, जो बत्ती जलते ही लुप्त हो जाते हैं। यह नाटक विघटित सेक्स का चित्रण प्रस्तुत करता है। इसकें कार्यव्यापार की भी कमी रही है, जिससे नाटक बड़ा धीमा और उबऊ लगता है। इसमें प्रतीक योजना अस्पष्ट है। इसलिए यह नाटक अभिनेयता की दृष्टि से असफल रहा है। मुद्राराक्षस की नाट्य-यात्रा में "तिलचट्टा" नाटक एक महत्वपूर्ण पाड़ाव है।

मुद्राराक्षस की नाट्य-यात्रा में एक और पाड़ाव "तेंदुआ" है, जिसमें नाटककार ने उच्च वर्ग के लोगों द्वारा मध्यवर्ग के शोषण को दिखाने के लिए पशु-प्रतिकों और अतिरंजित यथार्थ का उपयोग किया है। इसमें सामन्तवाद दिखाने के लिए लोकगीत की अनेक आवृत्तियों को रेखांकित किया है। यह नाटक तीन अंकों का है - पहला रेणु के बँगले के बाहर, दूसरा बँगले में औरे तीसरा पहले स्थान पर। नाटक में दृश्यबन्ध के बारे में विशेष निर्देश नहीं है। इनकी भाषा पात्रानुकूल है। इसके पात्रों के संवादों में अंग्रेजी भाषा के अधिक शब्दप्रयोग और वाक्य आते हैं। इसीकारण यह नाटक विशिष्ट वर्ग का हो गया है। उसका मंचन असफल होने का कारण यह रहा है कि नाटक में टार्चर स्वरूप भारतीय न होकर पाश्चात्य अधिक रहा है। इनके नाटकों में प्रायः विद्रोह, आतंक, हत्या और यौन-भावना का ही चित्रण रहा है। "मुद्राराक्षस ने अपने नाटकों में, शिल्प के क्षेत्र में अनेक नये प्रयोग किये हैं। मंचन की दिशा में इनके प्रयोग भले ही विशेष कारगर नहीं हो, पर असंगत नाट्य-शिल्प की तलाश में इन्हें अच्छी सफलता मिली है।"[11]

शांति मेहरोत्रा

शांति मेहरोत्रा के "एक और दिन" और "ठहरा हुआ पानी" ये दो नाटक असंगत नाट्य-शिल्प में आते हैं। इन नाटकों में आधुनिक समाज के बदलते तेवर

और उससे निर्माण होती विसंगतियों का चित्रण किया है। जिसमें मनुष्य जीवन की संबंधहीनता, अजनबीपन, स्त्री-पुरूष संबंध की जटीलता जैसे अनेक प्रश्नों को द्वंद्वात्मक एवं प्रभावशाली रूप से अभिव्यंजित किया है।

अन्य नाटककार

उपरोक्त नाटककारों के नाटकों के अलावा हिन्दी में और भी नाटककार हैं, जिन्होंने विसंगत नाट्य परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान देकर हिन्दी नाटक क्षेत्र को आगे बढ़ाने का कार्य किया है। जिसमें उल्लेखनीय हैं - सुदर्शन मजीठिया (चौराहा), सुदर्शन चोपड़ा (अपनी पहचान), रमाशंकर निशेष (चील घर), चंद्रशेखर (कटा नाखून) और डॉ॰चंद्र (कुत्ते) आदि।

हमीदुल्ला और उनके असंगत नाटकों की अवधारणाएँ

हमीदुल्ला का जन्म 5 मार्च 1933 को जयपुर जिले के एक ग्रामीण मध्यवर्गीय कृषक परिवार में हुआ। इनके स्वर्गीय पिता श्री अब्दुल गनी भारतीय सेना में "कमीशण्ड" अधिकारी थे। उनकी शैक्षणिक अर्हता एम्॰ए॰, एलएल्॰बी॰ तथा साहित्य रत्न है। उनकी पत्नी का नाम जैनब है। उनके दो पुत्र रत्न और दो पुत्रियाँ हैं। दोनों पुत्र कार्यरत हैं। उनके जेष्ठ पुत्र नसरूल्ला खान भारत सरकार के अधीन हिन्दी अधिकारी के रूप में कार्यरत है। और छोटे पुत्र का नाम संजीव है, जो व्यवसाय करता है। हमीदुल्ला की दोनों पुत्रियों का विवाह हो गया है। बड़ी पुत्री स्थापित महिला विद्यालय में अध्यापिका है, जिसका नाम जाहिदा परवीन है और छोटी पुत्री का नाम शाहिदा परवीन है, जो सूरत में रहती है।

हमीदुल्ला समसामयिक युग के प्रतिभासंपन्न नाटककार हैं। उनकी नाटककार बनने की स्थिति यकायक ही पैदा नहीं हुई अपितु इनके पीछे जन्मजात अभिनयशीलता का वह अनुराग वृत्ति है, जिसने उन्हें मात्र दस वर्ष की अवस्था में ही रंगमंच पर ला खडा किया। हमीदुल्ला के अभिनय में इतनी शक्ति है कि वे किसी भी भूमिका को सजीव कर देते हैं। उन्हें अभिनय के लिए कई पुरस्कार भी मिले हैं। वे न केवल असाधारण रंगकर्मी ही हैं, अपितु एक सुसंस्कृत व्यक्ति भी हैं। नम्रता उनके अंतःकरण के मर्म में समायी हुई है। वे प्रसन्नचित्त मस्तमौला एवं स्वावलंबी प्रकृति के धनी हैं। अतः वे अपने निकटतम् मित्रों तथा प्रशंसकों से के साथ

पेश आते हैं। और वे उनके आभारी भी रहते हैं। उन्हें प्रभाकर माचवे एवं अज्ञेयजी जैसे महान प्रतिभाओं का प्यार एवं प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ है। प्रभाकर माचवे ने अपने एक लेख में लिखा है कि यदि उनसे किन्ही दस सर्वश्रेष्ठ नाटकों का अनुवाद करने को कहा जाय तो उन नाटको में हमीदुल्ला के नाटक "दरिन्दे" का उल्लेख करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।"[12]

"पारिवारिक समस्याओं से मुक्त रख रंगकर्म के प्रति समर्पित भाव से कार्य करने हेतु हमीदुल्ला अपीन बेगम का हार्दिक आभार प्रकट करते हुए कहते हैं, "मेरी पूँजी दर्शकों, रंगप्रेमियों और पाठकों का प्यार है और मेरी शक्ति शोषितों, बेसहाराओं की ताकत है, जिनकी कराह ने मुझे उन जोकों के क्रिया-कलापों का पर्दाफाश करने की ताकत दी है, जो हर विवश को हलाल करने को तत्पर हैं, और जिनकी दाड़ में आदमी का खून लग चुका है। मेरा अपना नाटक "एक और युद्ध" के कोरस की इस पंक्ति पर पूर्ण विश्वास है कि "अजगर तुम अभी जिन्दा हो, तो अभी नहीं कभी मत कहो। काली रात के साये ढलेंगे जुल्म मिटेगा।"[13]

भारतीय नाट्य आन्दोलन में सृजन एवं मंचन पक्ष से जीवन्त रूप से जुडे हुए प्रयोगधर्मी नाटककारों में हमीदुल्ला का व्यक्तित्व बहुआयामी है। उन्होंने अपने नाटकों में समाज की बिगडी हुई व्यवस्था, विघटित प्रवृत्तियाँ, आधुनिक जीवन की व्यस्तता में मनुष्य अपनी कुचली हुई उम्मीदों के सेाथ किस तरह बूँद-बूँद पिघल रहा है, इसीका वर्णन किया है। उनका जन्म ग्रामीण कृषक परिवार में होने के कारण उन्हें मध्यवर्गीय आदमी की संवेदनाओं का पूरा अनुभव है। उन्होंने अपने नाटकों के कथानकों का चयन किया है, जो आज के जिन्दगी से सरोकार रखते हैं और जो आज का सत्य हैं। उन्होंने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते कमजोर व्यक्तियों के जीवन की विसंगतियों का अपने नाटकों में खास तौर से चित्रण किया है। उनके नाटको में मंचीय भाव और मंचीयता का भरपूर समावेश हुआ है। हमीदुल्ला ने कहानीकार तथा साहित्यकार के रूप में ही ख्याति एवं सम्मान प्राप्त नहीं किये किंतु एक सफल अभिनेता के रूप में भी उन्होंने कलात्मकता को प्रदर्शित किया है। उन्होंने "हरबार" नाटक के स्वामीनाथन् को मंच पर प्राणवान बनाया है। इसके बाद "जैमती" नाटक में उन्होंने बाबा रूपनाथ की भूमिका अत्यंत जीवन्त रूप में प्रस्तुत की। अतः एक रंगमंचीय कलाकार, रंगआलेख या नाट्यकृति के लिए भी

उन्हें अनेक पुरस्कार एवं सम्मान आदि प्राप्त हुए हैं, जिनकी सूची निम्नांकित हैं -

× सन 1966 में राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार और सवर्ण पदक से सम्मानित।

× सन 1974 में सर्जनात्मक लेखन के लिए राजस्थान सरकार का योग्यता पुरस्कार।

× हरियाणा भाषा-विभाग छ्वारा अखिल भारतीय नाट्य-लेखन प्रतियोगिताओ में सन 1970-71, 1972-73 और 1973-74 में पुरस्कृत।

× सन 1974-75 में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित "उलझी आकृतियाँ" नाटक पर "उत्तर प्रदशे राज्य साहित्यिक पुरस्कार"।

× सन 1976-77 में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित नाटक "दरिन्दे" पर उत्तर प्रदेश साहित्य संस्थान अवॉर्ड।

× सन 1978-79 में लोकनाट्य शैली पर आधृत पूर्णकी नाटक "ख्याल भारमली" राजस्थान साहित्य अकादमी अवॉर्ड से पुरस्कृत।

× सन 1982 में पूर्णकी नाटक "उत्तर उर्वशी" राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च "मीरा पुरस्कार" से सम्मानित।

× सन 1984 में भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अधीनस्थ आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा हैद्राबाद में आयोजित 14 वीं अखिल भारतीय सिविल सर्विसेस नाट्य प्रतियोगिता में सर्वोत्तम अभिनय का "अखिल भारतीय सिविल सर्विसेस नाट्य प्रतियोगिता पुरस्कार।

× 15 अगस्त 1992 में राजस्थान के मुख्यमंत्री द्वारा "सर्वोत्तम सर्जनात्मक लेखन" पुरस्कार से अलंकृत।

X हाल ही में उन्हें अपनी कृति 'हरबाए' पर के.के. बिड़ला फाउंडेशन नयी दिल्ली का पचास हजार रुपयें का 'बिहारी पुरस्कार' से सम्मानीत किया है।

× भारत सरकार एवं गृह मंत्रालय द्वारा दिल्ली में गुजरात सरकार द्वारा अहमदाबाद में, मध्यप्रदेश सरकार द्वारा भोपाल में तथा कर्नाटक सरकार द्वारा बेंगलूर में आयोजित "अखिल भारतीय सिविल सर्विसेस नाट्य प्रतियोगिताओं में "सवोत्तम नाट्यलेखन" के पुरस्कार से सम्मानित।

× सन 1978 में भारत सरकार के शिक्षा एवं सांस्कृतिक मंत्रालय से फैलोशिप प्राप्त।

× सन् 1979-80 में पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा कलकत्ता में आयोजित 12 वीं अखिल भारतीय सिविल सर्विसेस नाट्य प्रतियोगिता में सर्वोत्तम अभिनेता का मेरिट सर्टिफिकेट प्राप्त।

इस प्रकार से "हमीदुल्ला" को विविध पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। फिर भी वे आत्मप्रशस्ति एवं प्रसिद्धि से काफी दूर रहते हैं। निरन्तर लेखन और सृजन प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं। इसके साथ-साथ वे राजस्थान विश्वविद्यालय के नाट्य विभाग सृजन मंचन संबंधि गतिविधियों में गहरे रूप से प्रतिबद्ध तथा इस विभाग के परीक्षक एवं अन्यान्य पाठ्यक्रमों की समितियों के सदस्य रहे है। वे वर्तमान में पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र की कार्यक्रम समिति के सदस्यत्व भी प्राप्त कर चुके हैं। उनके नाटक और नाट्य कार्य पर अध्येनाओं द्वारा शोध-प्रबंधों की रचना हो चुकी हैं और हो रही है। इसके अतिरिक्त उनके भारत के लगभग सभी प्रमुख नगरों में नाटक प्रदर्शित तथा आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित हो चुके हैा। उनके नाटकों का अनुवाद बंगाली, कन्नड, मराठी और सिंधी भाषाओं में ही हो चुका है। हमीदुल्ला प्रभावशाली नाटककार होने के कारण उनके "दरिन्दे" नाटक का अनुवाद बंगाली भाषा में "आदिम" शीर्षक से बंगाल सरकार ने किया है, जो बंगाल मासिक "नाट्यदर्पन" के अगस्त 1977 के अंक में प्रकाशित हुआ है। इसके साथ-साथ उनके "ख्याल भारमली" नाटक का अनुवाद कन्नड भाषा में श्री·एम·सी·हस मूर्ति ने किया है, जो "दासी भारमणि" के शीर्षक से कन्नड में पुस्तक रूप प्रकाशित हुआ। "बर्बरीक" का अनुवाद मराठी भाषा में डॉ·गो·रा·कुलकर्णी ने किया है,

जो समकालीन भारतीय साहित्य की परिचायक हिन्दी ग्रंथालय, सांगली की पत्रिका "सम्बन्ध" में प्रकाशित हुआ है। इसके अलावा उनके "एक और युद्ध" का सिंधी अनुवाद लक्ष्मण मम्माणी ने किया है, परन्तु यह प्रकाशित नहीं हुआ है। इसी प्रकार "उलझी आकृतियाँ" एवं "समय सन्दर्भ" का गुजराती अनुवाद मजुराय ने किया है, परन्तु यह दोनों नाटक भी अप्रकाशित हैं।

इसप्रकार हमीदुल्ला का साहित्य संसार बहुमुखी और बहुविध है। आज भी वे नित्य साहित्य सर्जना में रत रहे हैं। उनके नाटक कथ्य, शिल्प और प्रस्तुति की दृष्टि से नवीन और मौलिक हैं। अब भी उनके नाटक कई साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। निस्संदेह उनके नाटक हिन्दी नाट्य-साहित्य संपदा की श्रीवृद्धि करते हैं।

कृतित्व

हमीदुल्ला का कृतित्व बहुआयामी है। 1954 में राजकीय सेवा में रहते हुए उन्होंने कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया। हरिभाऊ उपाध्याय की अध्यक्षता में कविता प्रतियोगिता में उन्होंने द्वितीय स्थान प्राप्त किया, इसके परिणामस्वरूप उन्हें कविरत्न की उपाधि से सम्मानित किया गया। कविता के साथ-साथ उन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखीं। हमीदुल्ला कृत बालोपयोगी कहानियाँ देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही। इसके साथ-साथ उनकी यही कहानियाँ देश की प्रमुख आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित होती हैं। जयपुर की हिन्दी सेवा संस्था साहित्य सदावर्त में रहते हुए गुरू कमलाकर "कमल" के मार्गदर्शन में दो एकांकी नाटकों की रचना करने के बाद उन्होंने कई एकांकी नाटक लिखें।

इन्हीं एकांकी लेखन की सफलता से प्रेरित होकर उन्होंने सर्वप्रथम 1969 में पूर्णांकी नाटक "उलझी आकृतियाँ", 1970 में "एक और युद्ध", 1971 में "समय सन्दर्भ", 1973 में "दरिन्दे", 1982 में "हरबार" की रचना की हमीदुल्ला के अन्य पूर्णांकी नाटक "उत्तर उर्वशी", "ख्याल भारमली" तथा "अन्तर्कथा" है।

वर्तमान पीढ़ी के नाटक प्रेमियों के लिए हमीदुल्ला एक ऐसे तेजस्वी नाटककार का रूप लेकर आये हैं, जिसमें निःसंदेह रंगजगत् की युगीन विसंगतियाँ, मानव नियति और वर्तमान संघर्षशील परिस्थितियाँ, अलगाव-चिन्तन, अजनबीपन, मानवीय रिश्तों के गहरायें अन्तरालों का प्रश्नानुकूल सम्वेदन, सम्वादशून्यता में जन्मते हुए अपने अपने अहसान और उनकों रे हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के वर्तुल जिन्दगी के साथ समझौते की खोज में आदमी की बेचारगी, खंडित अस्थाएँ, संक्रमित जीवनमूल्य, क्षणवादी-भोगवादी चिन्तन परिणतियाँ, मनोविकृतियों के सहज प्रतिरूप आदि अपनी गहरे इन्सानी सरोकार और वर्तमान की यथास्थिति, स्वीकृति अन्तर्लय में व्यंग्य को जन्म देती है।"[15]

हमीदुल्ला निश्चित तौर पर आधुनिक बोध के नाटककार के रूप में सामने आते हैं। इन्होंने आधुनिक बोध की पर्याप्त अभिव्यक्ति अपने नाटकों में दी हैं। उनका कहना है कि नाटक जिन्दगी की कोमलतम अभिव्यक्ति में से एक हैं, जिसमें दर्शक अपने सामने देखकर, सुनकर, रसानुभूति पाते हैं। इसीको फलस्वरूप उनके नाटकों में मनुष्य जीवन की विभिन्न विंसगतियों ने जन्म लिया है। उनके नाटकों के संवाद भी छोटे और संवेदनशील होते हुए मनुष्य के अन्तर्मन तक घुस जाते हैं। उनके नाटकों की भाषा भी सरल और सीधी बोलचाल की लगती हैं। परिणामस्वरूप मनुष्य को उनके नाटक पढ़कर या देखकर जीवन की अनेक विघटित परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उनके नाटकों के पात्र भी सामान्य ही रहे हैं। उनकी वेशभूषा पात्रानुकूल हैं।

हमीदुल्ला की यही विचारधारा उनके नाटकों में पायी जाती है, जो आज के जिन्दकी से सरोकार रखती है और जो आज का सत्य है। उन्होंने अपने नाटकों में खासतौर से कमजोरे, गरीब व्यक्तियों के जीवन की युगीन विसंगतियों का चित्रण गहरे रूप से किया है। विजय कुलश्रेष्ठ ने अपने लेख में लिखा है - "हमीदुल्ला सामाजिक और मध्यवर्गीय यथार्थ तथा विसंगतियों का चित्रण अतिसूक्ष्मता और रंगकौशल्य के साथ करते हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि हमीदुल्ला इन तमाम प्रश्नों से नाटककार की हैसियत से जूझते हुए यथार्थ और व्यंग के निकष पर ये प्रश्न उठाते हैं। "एक और युद्ध" नाटक का प्रश्नान्त रूप इस बात को अधिक सार्थक

बना देते हैं।"[16]

रंगमंच का सक्रिय अनुभव रखनेवाले युवा नाटककारों में हमीदुल्ला हिन्दी जगत् के सर्वाधिक प्रयोगशील नाटककारों में एक हैं। उनके नाटक नये प्रयोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे हैं। रंगशिल्प की दृष्टि से प्रेम सम्बन्धों की व्यर्थता और स्त्री-पुरूष की पारस्परिक खोज को व्यक्त करने के लिए उन्होंने नाटक के स्त्री-पुरूष पात्रों को अस्पष्ट, टूटे वाक्यों और निरर्थक ध्वनियों के प्रयोग करने तथा विशिष्ठ गतियों और मुद्राओं के साथ नाट्यधर्मी अभिनय करते हुए प्रदर्शित किया है।

नाट्य कला के साथ-साथ कहानीकार, बालसाहित्यकार, कवि, एकांकीकार, रेडियो नाटककार एवं नाट्यधर्मी शोधार्थी के रूप में भी हमीदुल्लाजी ख्याति एवं सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। उनकी नाटकीय संरचनाएँ वास्तविकता के करीब हैं, जिसमें मानवीय प्रश्नों को लेकर समाज के अंतरंग का चित्रण हुआ है। उनके नाटकों में सहज, स्वाभाविक, प्रचलित शब्दावली का प्रयोग दिखाई देता है, जो लोगों के आन्तरिक मन्तव्य को सहजता के साथ अभिव्यक्त कर देता है। उनके पूर्णकी नाटक निम्नलिखित हैं -

1· उलझी आकृतियाँ (1969)	2· "एक और युध्द" (1970)
3· समय सन्दर्भ (1971)	4· दरिन्दे (1973)
5· हरबार (1982)	6· उत्तर उर्वशी
7· ख्याल भारमली	8· अन्तरकथा
9· बर्बरीक	10· जड़ से कटता आदमी
11· सुनो सत्य बैरागी	12· जैमती
13· सुदामा दिल्ली आये	14· अजगर
15· अन्दर का आदमी	16· मशीनी औरत
17· हरित गंधा	18· अन्धी दौड
19· काली आँधी	

इसमें से "अन्तर कथा" और "अजगर" यह दो रेडियो नाटक हैं। जिनको जयपुर दूरदर्शन से प्रसारित किया गया है। "अन्धी दौड" तथा "काली आँधी" दानों ही नाटक अप्रकाशित हैं। उनके नाटको में "उलझी आकृतियाँ", "एक और युध्द", "दरिन्दे", "उत्तर उर्वशी" ये चार नाटक विशेष महत्व रखते हैं। हमीदुल्ला के अन्य नाटक "ख्याल भारमली" में जयपुर शैली का सफल प्रयोग किया है। "सुदामा दिल्ली आये" नाटक में मानव मूल्यों के अधःपतन को दर्शाया है। "हरबार" में हमीदुल्ला ने युगसंदर्भ में जुडा कथ्य और शिल्प के स्तर पर एक नया प्रयोग किया है। इसके अलावा "बर्बरीक", "जैमती" ये दोनों नाटक भी कुछ मात्रा में महत्त्व रखते हैं। उनके इन सभी नाटकों में मनुष्य जीवन की विभिन्न विसंगतियों को चित्रित किया है।

उलझी आकृतियाँ (1969)

हमीदुल्ला को "उलझी आकृतियाँ" नाट्यसंग्रह एक नये प्रयोगधर्मी नाटककार के रूप में प्रतिमान करता है। इस संग्रह के तीनों नाटक - "समय सन्दर्भ", "एक और युध्द" तथा "उलझी आकृतियाँ" अपने कथ्य में असंगत परिवेश, समसामयिक युग के गहन प्रश्नों तथा जीवन के अनेक समस्याओं को सर्वथा नये किन्तु प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त करता है।

इस संग्रह का प्रथम नाटक "समय सन्दर्भ" वर्तमान के मशीनीकृत मानव की कल्पना कर वैज्ञानिक उपलब्धियों के अभिशाप को प्रस्तुत करता है। आदमी विज्ञान की ओर जिस तरह अग्रेसर हो रहा है, उसी के साथ वह अपना कर्तव्य भूलकर जीवन को और भी वेदनामय बना रहा है। इसमें राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और न्याय व्यवस्था पर कटाक्ष कर, मशीनों के कार्यों पर निर्भर मनुष्य आज अर्थ और भौतिक सुखों को ही जीवन का सर्वस्व समझ बैठा है। परिणामस्वरूप मानवीय मूल्यों का विघटन होकर मनुष्य भी मशीनों की तरह अपना बर्ताव करने लगा है। हमीदुल्ला ने इस नाटक में मानव और मशीनी मानव के संघर्ष की प्रतिकात्मक अभिव्यक्ति को नाटक की कथावस्तु में प्रस्तुत किया है। बोस अपनी सर्जना से संतुष्ट हैं किन्तु एक दिन मशीनी मानव ही अपने अधिकार और शोषण के प्रश्नों पर विद्रोह मचाकर उसके सृजन की उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है। हमीदुल्ला ने इसी

संघर्ष को वर्तमान युग की राजनीति, भ्रष्टाचार, फ्रेस का फ्रेस और समझौता-बर्ताओं की हास्यास्पद स्थितियों, न्याय-व्यवस्था के खोखलेपन सामाजिक जीवन में हलचल मचाने वाले हिप्पीरीज्म आदि को सजीव और गहरे रूप में अभिव्यक्ति दी है।

इस नाटक के संवाद व्यंग्यात्मक हैं। संवाद और छिपा व्यंग्य नाटक का प्राण बनकर रहे हैं। संक्षिप्त संवादों द्वारा नाटककार ने प्रत्येक क्षेत्र के खोखलेपन को उजागर किया है। यह नाटक दो अंकों में विभाजित हैं। इसका शिल्प नया एब्सर्ड नाट्यशिल्प का प्रयोग किया है। यह एक ही दृश्यबन्ध पर दो सैट लगाकर प्रकाश योजना द्वारा भिन्नता का संकेत दिया गया है। सूत्रधार के संवादों द्वारा मंच को दर्शको से जोड़ने का प्रयास किया गया है। नाटक में ध्वनि और प्रकाश योजना का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस संग्रह का दूसरा नाटक "एक और युध्द" है। जिसमें आदमी के निराशापूर्ण मानसिकता के यथार्थ का अवलोकन किया है। नाटक का स्त्री-पात्र "आशा" जिन्दगी से झगडते झगडते आखिर थककर डॉक्टर के पास इलाज करने आती है। लेकिन उसके लिए डॉक्टर के पास ऐसा कोई इलाज नहीं है - जिसमें आशा को शांति मिले। इसमें नाटककार ने वर्तमान जीवन को उसके सम्पूर्ण परिवेश और समस्याओं के साथ समेटने का प्रयत्न किया है। हर क्षेत्र में आज अराजकता, रक्तपात, धर्म के नाम पर होनेवाले पाशविक कृत्य, लेखकों, साहित्यकार और निर्देशकों की स्वार्थपरक अवसरवादी वृत्तियों, विधवाओं का निराश्रित जीवन, राजनेताओं के छल-कपट, बेरोजगारी, मँहगाई को एब्सर्ड नाट्यशैली में प्रस्तुत किया है। नाटक में "आशा की स्मृतियों से जुडे इन विभिन्न प्रसंगों द्वारा सामाजिक युग के असंगत परिवेश को मूर्त करने का प्रयास किया है।

इसमें न तो विशिष्ट कथासूत्र हैं और पात्रों का नामकरण। इसमें चारो तरफ मँडराती आकृतियों और आवाजों को पात्रों का प्रतिकात्मक रूप देकर नाटककार ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की अव्यवस्था को मूर्त करने के लिए घटनाओं का "कटपीस" की तरह उपयोग किया है। नाटक का शिल्प नया है, किन्तु कथानक के अनुकूल हैं। इसमें संगीत, नेपथ्य की ध्वनियौ और प्रकाश योजना का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस तरह नाटककार संपूर्ण विसंगत परिवेश को अभिव्यक्त करने में सफल रहा है। यह नाटक नया और मौलिक प्रयोग है।

इस संग्रह का अन्तिम नाटक "उलझी आकृतियाँ" प्रभावशाली नाटक है, जो आज के नौकरशाही पर करारा व्यंग्य करता है। सरकारी कार्यालय की निष्क्रियता और उसके कार्यकर्ताओं की अवसरवादी नीतियों को प्रस्तुत कर नाटककार वर्तमान युग में सर्वत्र व्याप्त खोखलेपन और मानव को यंत्र बना देने की प्रवृत्ति का करूण चित्र प्रस्तुत कर देता है। कोई भी व्यक्ति नियम के अनुसार अपने काम पर हजीर नहीं रहता। उसी के साथ-साथ आज सभी आदमी शतरंजी मोहरे मात्र बन गये हैं। कौन किस के कहने पर यह सब करता है, इसकी जानकारी आज आदमी को मालूम होनी चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि जनता के अधिन होते हुए भी जनता उसका कोई फायदा नहीं लेती। आज किसी भी कार्यालय में रिश्वत दिये बगैर कोई काम नहीं होता। नौकर अपना कर्तव्य भूलकर काम कर रहे हैं। उन्हें ऐसे कामों से क्या लेना देना है, उन्हें तो अपने हित का ही पड़ा है। यही कथ्य के रूप में नाटककार ने लिया है।

यह नाटक दो अंकों में विभाजित है। इसके संवाद चुस्त, संक्षिप्त और समसामयिक युग को उसकी विसंगत परिवेश और अनीति को मूर्त करने में सफल रहा है।

दरिन्दे (1973)

हमीदुल्ला का यह दूसरा नाट्यसंग्रह है। यह समसामयिक युग और मानव के भिन्न-भिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करता है। इस संग्रह के चारों नाटक - "दरिन्दे", "घरबन्ध", "दूसरा पक्ष" और "अपना-अपना दर्द" मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों को अंकित करता है।

इस संग्रह का पहला नाटक "दरिन्दे" में समाज के अधःपतन और स्त्रियों के शोषण का चित्रण है, जिसमें पशुओं को मनुष्यों के समान व मनुष्य को पशुओं के समान चेष्टाएँ करते हुए दिखलाया है। इसमें नाटककार ने मनुष्य की पाशविकता का स्वरूप अपनी भाषा और रंगमंच को ध्यान में रखकर पशू जीवन के समान दिखलाया

है। इसमें घटना-प्रधान कथा के स्थान पर नैतिक मूल्यों के -हास को व्यक्त करने के लिए एक के बाद एक कई प्रसंगों की अवतारणा की है। "दरिन्दे"नाटक में प्रतिकों और एब्सर्ड शैली के संवादों द्वारा मानव को उसकी पाशविकता के कारण पशुओं से भी घिनौंना सिद्ध किया है। इस नाटक में पशुओं का प्रतिकात्मक प्रयोग कर हमीदुल्ला ने अपने कथ्य की मार्मिकता को बढ़ा दिया है। इसके संवाद पैने, व्यंग्यपूर्ण और एब्सर्ड नाट्यशैली की तरह कलात्मक, ऊलजलूल हैं।

इस नाट्यसंग्रह का दूसरा नाटक "घरबन्ध" है। जिसमें देश में व्यापक रूप से होने वाले हड़तालों और बन्द पर व्यंग्य किया गया है। यह कथावस्तु की दृष्टि से सरल और मनोरंजक नाटक है। यह मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित नाटक है। पत्नी और बच्चे अपनी माँगों के लिए घरबन्ध कर देते हैं, किन्तु एक सम्बन्धी के आते ही सारी घरबन्धी टूट जाती हैं। हमीदुल्लाजी ने इस कथानक के द्वारा देश में होनेवाले हड़तालों और दुष्परिणामों को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

दूसरा पक्ष

यह नाट्यसंग्रह का तीसरा नाटक है। वह अभिजात्य वर्ग की वास्तविक स्थिति को दिखाने में सक्षम है। इसमें नाटककार ने समाज के दो पक्षों का चित्रण किया है। एक पक्ष अपनी प्रतिष्ठा, पद और धन के लिए किसी के भी जीवन से खेल सकता है। और दूसरा पक्ष सदैव शोषण और अन्धकार का शिकार गरीब है। उसके अधिकार और जीवन का कोई मूल्य नहीं है। नाटक के दो पात्र मोती और वकील दीनदयाल के चरित्र इन्हीं दो पक्षों को प्रस्तुत करते हैं। यह नाटक समाज को कलुषता और पाशविकता को प्रस्तुत करता है।

इस नाट्यसंग्रह का अंतिम नाटक "अपना अपना दर्द" मनुष्य के जीवन को गहराई से प्रस्तुत करता है। मँहगाई के कारण माता-पिता के हृदय से वात्सल्य भाव नष्ट कर दिया है। इसी अभाव के कारण संतान मधु माता-पिता द्वारा उपेक्षित होने पर मामी के पास रहने के लिए मजबूर है। लेकिन बिहारी लाल के स्नेह

और सुरक्षा के कारण मधु उसके पास आती है, किन्तु यहाँ एक दरिन्दे का शिकार बनती है, जो धन कमाने के लिए उसका उपयोग करती है। और अन्ततः घर से निकाल देती है। उसके बाद डॉ॰वीरेन के आश्रय में जाती है। लेकिन डॉक्टर वीरेन की पत्नी आते ही उसे निकाल दिया जाता है। अन्ततः मधु एक्सीडेन्ट में मर जाती है।

हमीदुल्ला के दोनों नाट्यसंग्रह "उलझी आकृतियाँ" और "दरिन्दे" वस्तुतः औद्योगिक और वैज्ञानिक युग से उद्भूत परिस्थितियों के कारण मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में व्यापने वाले अभिशाप को उभारते हैं। वर्तमान परिवेश की विसंगतियों और उनके संघर्ष में टूटता एकाकी मनुष्य ही इनका केन्द्रबिंदू है। यथार्थवाद और एब्सर्ड नाट्यशिल्प के प्रयोगों से एक समर्थ नाट्य-परम्परा की खोज इनके नाटकों के रूपबन्ध में लक्षणीय है।"[17]

उत्तर उर्वशी

हमीदुल्ला ने इस नाटक में पौराणिक युग के पुरूरबा और उर्वशी के समान प्रेम की भाव-संकुलता और एक-दूसरे के लिए उत्कट चाह वर्तमान युग में नहीं रह गयी इसका चित्रण किया है। इस नाटक में वर्तमान युग की जटिल परिस्थितियों का पर्दाफाश किया है। आज के इन जटिल परिस्थिति के कारण बने युवक-युवती संबंधों का नया अनुभव विसंगत शिल्प की द्वारा प्रस्तुत किया है। इस नाटक को वार्तालाप द्वारा लोकनाट्य के समान स्वरूप दिया है। नाटक में नाटककार ने एक पात्र से अनेक भूमिकाएँ करायी हैं।

ख्याल भारमली

इस नाटक में हमीदुल्ला ने जयपुर शैली का पूरा पूरा प्रयोग किया है, जिसके अनेक सफल प्रदर्शन हो चुके हैं। इस नाटक में सामंत कालीन नारी के मन की वेदना की सशक्त अभिव्यक्ति है। सामंत कालीन नारी को एक मछली की तरह अपना जीवन व्यतीत करना पडता है। इस काल में शासक नारी को अपनी वासना की तृप्ति के दृष्टि से देखते थे। नारी अपने अधिकारों से वंछित थी। इस दृष्टि से नाटककार ने "ख्याल भारमली" का निर्माण किया, जिसमें राजस्थान में सामंती काल में नारी के शोषण, उसके अन्तर्मन की वेदना और वर्ग संघर्ष का एक जीवन्त

दस्तावेज है। जिसके आईने में आज के नारी स्वातंत्र्य को भी देखा जा सकता है। पुरूष की निकटता से स्त्री पाती है एक "अधिकार" पुरूष से जिसे वह अपने अस्तित्व के साथ जोड़ देना चाहती है लेकिन जब उसे उसके इस "अधिकार" की ,हैसियत" में चोट पहुँचती है तो वह मछली की तरह तड़प उठती हे, जिसके समन्दरी सतरंगी सपने को तोड़कर उसे सूखी रेत पर तड़पने के लिए पटक दिया हो।

भारमली को शासक द्वारा वासना की अतृप्त प्यास की तृष्टि के लिए भोगा तो जाता है, लेकिन उसकी कोख का जन्मा बालक परम्परा के अनुसार शासक का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था, क्योंकि भारमली एक दासी थी। इसीका चित्रण हमीदुल्ला ने इस नाटक में किया है।

राजस्थान में रंगमंच की गौरवशाली परम्परा रही है। "ख्याल" उसी परम्परा का एक प्रकार है। "ख्याल" की परम्परा लगभग तीन सौ वर्ष पुरानी है। "18 वीं शताब्दि के आरम्भ में आगरा के निकटवर्ती क्षेत्रों में दो दलों के बीच नगाड़े की ताल पर काव्यमय प्रश्नोत्तरी की ऐसी शैली विकसित हुई, जो "ख्याल" कहलाने लगी।"[10] इसीको ध्यान में लेकर उसी परम्परा को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से हमीदुल्ला ने इसकी रचना की होगी।

सुदामा दिल्ली आये

हमीदुल्ला का यह नाटक कृष्ण-सुदामी चरित की एक घटना के आधार पर रचित है। प्रस्तुत नाटक में मानव मूल्यों के अधःपतन आज की मशीनी जिन्दगी, आदमी की स्वार्थपरता और उसकी बेचारगी को दर्शाया है। आज के यांत्रिक युग में आदमी को इतना आत्मकेंद्रित बना दिया है कि वह स्वयं के स्वार्थ की परिधि से परे बाहर जाकर कुछ देख ही नहीं पाता। जीवन की इस त्रासदी में आदमी का अपना संघर्ष ही उसके विश्वास को टूटने से बचाने का एक मात्र विकल्प है। मूल्यविहीन और संस्कारशून्य होते जाने का प्रतिरोध सबकी साँझी लड़ाई है। यही इस नाटक के पीछे मूल भावना नाटककार ने दी है।

हरबार

हमीदुल्ला का "हरबार" नाटक युग सन्दर्भ में जुडा कथ्य और शिल्प के स्तर पर एक नया प्रयोग है। जिसमें रक्तपिपासु जोंको के क्रिया-कलाप का जीवन्त चित्रण किया है, जो प्रत्येक विवश आदमी को हलाल करने पर तुला है और जिनके दाड़ में आदमी का खून लग चुका है। यह नाटक मंच पर सफलता के साथ खेला जा चुका है। आज के आदमी के संघर्ष से भरे यातनाओं का सशक्त दस्तावेज है। सब कुछ दे चुकने के बाद भी रक्त-मांस की भूख मिटा पाने के मर्मातक मोहभंग की सशक्त अभिव्यक्ति हमें "हरबार" में पाने को मिलती है।

बर्बरीक

इस नाटक का निर्माण वर्तमान एवं अतीत की विसंगतियों, विनाशपूर्ण, निराशापूर्ण मानसिकता के यथार्थ का अवलोकन कराने के लिए किया है। आज के आदमी की जिन्दगी में निराशा ही निराशा है। जिसमें आदमी पानी-पानी हो रहा है। इसमें संत्रास एवं नैराश्य की एक मिथकीय रूप देने का प्रयत्न किया है। बर्बरीक सत्-असत् के संघर्ष का दायित्व अपने ऊपर लेता है। क्योंकि पात्र डंकन की हत्या और मैकबेथ के नाअककार शैक्सपीयर द्वारा उनकी त्रासदी के लिए अपराध की अस्वीकृति देता है। उसी तरह इतिहास भी अस्वीकृति देता है। इससे नाटककार ने "डंकन की हत्या की प्रेरणा देने वाली लेडी मैकबेथ का चरित्र आधुनिक परिस्थितियों में देखा जा सकता है तो इसके साथ ही न जाने कितनी मंजु, गोमती, उषा, मालती नववधुएँ पुरूष अत्याचार की शिकार होकर मिट्टी का तेल डालकर आत्मदहन नहीं करती अपितु दूसरी नारी (सास या ननद या जिठानी) के अत्याचारों की अतिशयता से पीड़ित होकर ही आत्मदाह करने के लिए बाध्य होती देखी गई है। इस दृष्टि से यह नाटक अपनी समसामयिक चेतना और प्रासंगिकता को रेखांकित करने में पूर्णतः सफल है। यही नहीं धर्मगत भेदभाव की संकीर्णता और वैषम्य तथा उससे उत्पन्न धार्मिक संघर्ष और अलगावादी वृत्तियों पर भी यह नाटक प्रहार करता है।"[19]

जैमती

हमीदुल्ला का यह पूर्णांकी नाटक है। जिसमें उन्होंने सामंत कालीन नारी की स्थिति कितनी दयनीय थी और नारी अपनी अधिकारों से किस तरह वंछित थी इसका चित्रण बगड़ावत देवनारायण महागाथा का एक प्रसंग जैमती-भोजा से अभिव्यक्त किया है। यह नाटक नारी मन की कोमल भावनाओं का रोमांचक दृश्य आदा करता है। जैमती द्वारा बूढे राजा को ठुकराना और जात-पात, ऊँच-नीच के भेदभाव को ठुकराकर उदारमना भोजा की स्वीकृति करती है, जिसमें नारी संघर्ष की वीरतापूर्ण कालजयी गाथा का चित्रण किया है।

हमीदुल्ला की यह प्रभावपूर्ण नाट्यरचना है, जिसके पड़शैली में सफल प्रदर्शन हुए हैं। इसमें राजस्थान की संस्कृति, चित्रकला, संगीत नृत्य आदि के लोक तत्वों एवं कलारूपों का अत्यन्त अर्थपूर्ण प्रयोग किया है। इस नाट्यरचना के संदर्भ में लक्ष्मी कुमारी चुण्डावत लिखते हैं कि "यह महागाथा एक कालजयी रचना है और नारी मुक्ति तथा प्रथा, दहेज आदि के कारण नारी शोषण के आज के युग में भी प्रासंगिक है।"[20]

प्रयोगधर्मी नाटककार हमीदुल्लाजी ने इसी के साथ-साथ "जड़ से कटता आदमी", "सुनो सत्य वैराणी", "अन्दर का आदमी", "मशीनी औरत" और "हरितगन्धा" आदि नाटकों का निर्माण प्रभावशाली रूप से किया है।

शोध-कार्य की दिशाएँ

हमीदुल्ला के व्यक्तित्व और कृतित्व को देखने के बाद उनके असंगत नाटकों के अध्ययन की दिशाएँ इसप्रकार निर्धारित की जा सकती है -

1· **विसंगत जीवन बोध :**

उपरी तौर पर मनुष्य जीवन में सुसंगति दिखाई तो देती है फिर भी उसके जीवन में विसंगति गहराई तक पहुँच चुकी है। इसीकारण उन असंगतियों को नज़रअन्दाज नहीं किया जा सकता। हमीदुल्लाजी ने भी अपने असंगत नाटकों में मनुष्य जीवन के भिन्न-भिन्न और गहरे विसंगतियों का पर्दाफाश कर उनका

कड़ा विरोध किया है। अतः उनके विसंगत नाटकों का अभिप्राय मनुष्य जीवन के विभिन्न विसंगतियों का चित्रण ही है।

2· **मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य**

हमीदुल्ला के विसंगत नाटकों के अधिकांश पात्र असामान्य (Abnormal) तथा जानवरों के प्रतिकों को लेकर प्रस्तुत किये हैं। उनके नाटकों में समाज के विभिन्न क्षेत्रों की विकृतियाँ दिखाई देती है। अतः उनके असंगत नाटकों को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखना अपने आप में अनिवार्य हो जाता है।

3· **नाट्य-शिल्प**

हमीदुल्ला के असंगत नाटकों का नाट्य-शिल्प प्रयोगात्मक नवीन शैली के द्वारा मनुष्य जीवन के विसंगतियों को प्रकट करने में सक्षम हैं। हमीदुल्ला ने विसंगत नाट्य-शिल्प के द्वारा जीवन की विभिन्न असंगतियों का चित्रण कर, नाट्य-शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय योगदान दिया है। अतः उनका नाट्य-शिल्प परंपरागत न होकर नवीन "असंगत नाट्य-शिल्प" है।

4· **रंगमंचीय आयाम**

किसी भी नाटक का निर्माण रंगमंच पर प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही होता है। हमीदुल्ला ने अपने सभी नाटकों का निर्माण रंगमंच को ध्यान में रखकर किया है। वे खुद एक सफल नाटककार होने के साथ-साथ अभिनेता भी और दर्शक भी रहे हैं। उनके नाटकों का मंच-विधान भी परंपरागत नाटकों से भिन्न नवीन टेकनीकों को लेकर किया गया है। अतः उनके विसंगत नाटकों का रंगमंचीय बोध भी आवश्यक है।

हमीदुल्ला के असंगत नाटकों के अध्ययन की इन्हीं दिशाओं को ध्यान में रखकर अगले अध्यायों में शोधपरक विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

स मा हा र

उपरोक्त विवेचन-विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि -

× भुवनेश्वर प्रसाद, विपिनकुमार अग्रवाल, मुद्राराक्षस, डॉ॰लाल, रामेश्वर प्रेम, तथा हमीदुल्ला ने हिन्दी के विसंगत नाट्य-परम्परा मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

× हमीदुल्ला बहुआयामी प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व के धनी हैं। उनके असंगत नाटक समाज का ही चित्रण करते हैं।

× हमीदुल्ला के असंगत नाटकों पर पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य-शिल्प का विशेष प्रभाव दिखाई देता है।

× हमीदुल्ला के असंगत नाटकों का "थियेटर ऑफ परफॉर्मेन्स" का रूप दिया है। (स्वयं प्रदर्शन-परक रंगमंच)

× हमीदुल्ला के नाटकों में विसंगतियों, असंगतियों, विस्थितियों का चित्रण कर आत्मा की तलाश में संघर्ष करती हुई पीढी को वाणी दी है। उसी के साथ-साथ मानवीय रिश्तों का खोखलेपन, हिंसा, क्रूरता, यौन-विकृति से उत्पन्न कुंठा, निराशा और संत्रास को नग्न रूप से प्रस्तुति दी है।

× हमीदुल्ला ने अपने नाटकों के कथ्य, शिल्प और रंगमंच की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ

1· संपा·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच §डॉ·नरनारायण राय, "असंगत नाट्य और जीवन संदर्भ" लेख§, प्र·सं·1981, पृ·83

2· डॉ·सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटको में प्रयोगधर्मिता, प्र·सं·1991, पृ·193

3· डॉ·सुषमा बेदी - हिन्दी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में, प्र·सं·1984, पृ·251

4· डॉ·जयदेव तनेजा - आज के हिन्दी नाटक : परिवेश और परिदृश्य, प्र·सं·1980, पृ·164

5· डॉ·रीताकुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में, सं·1991, पृ·131

6· डॉ·सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र·सं·1991, पृ·144

7· डॉ·सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र·सं·1991 पृ·145

8· डॉ·सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र·सं·1991, पृ·140

9· डॉ·सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र·सं·1991, पृ·143

10· डॉ·चन्द्र - नाट्य-चिन्तन : नये संदर्भ, §असंगत हिन्दी नाटक और रंगमंच, लेख§, प्र·सं·1987, पृ·89

11· डॉ·चन्द्र - नाट्य-चिन्तन : नये संदर्भ, §असंगत हिन्दी नाटक और रंगमंच, लेख§ प्र·सं·1987, पृ·92

12· सर्वेश भट्ट - सर्जना, §नवभारत टाइम्स, जयपुर, 1994 §2§

13· वही

14· हमीदुल्ला का भेजा हुआ पत्र, 25 अक्तुबर, 1995

15· हमीदुल्ला - "बर्बरीक" में संकलित (विजय कुलश्रेष्ठ, "हमीदुल्ला का रंग जगत्, लेख), संस्क·अप्रैल 1986, पृ·36

16· वही, पृ·86

17· डॉ·रीताकुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, सं·1961, पृ·125

18· हमीदुल्ला - "ख्याल भारमली" (भूमिका), संस्क·नवम्बर 1981, पृ·9

19· हमीदुल्ला - "बर्बरीक" (विजय कुलश्रेष्ठ, "हमीदुल्ला का रंगजगत्" लेख) संस्क·अप्रैल 1986, पृ·42

20· हमीदुल्ला, "जैमिति", (लक्ष्मीकुमारी चुण्डावत के विचार) सं·1987, पृ·11